नाउम्मीदी में विज्ञान की खोज

उचित समीकरण

☐ प्रो. जयन्त नार्लिकर

भारत जैसे विकाशील देश में विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रचार–प्रसार साक्षरता और शिक्षा के प्रचार–प्रसार जितना ही महत्वपूर्ण कार्य है। हमारे वैज्ञानिक तथा शिक्षित मध्य वर्ग के लोग इस कार्य को सरअंजाम देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। लेकिन इस के लिए हमें लोगों के बीच जाना होगा, उन्हें सम्बोधित करना होगा, उन से सीधा सम्पर्क कायम करना होगा। यह सब कैसे हो सकता है? इस में क्या समस्याएं आ सकती हैं? इसी पर चर्चा करता है विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. जयन्त नार्लिकर का यह अनूदित लेख जो 20 जनवरी, 2001 के अंग्रेज़ी अख़बार *टाइम्स ऑफ़ इण्डिया* में छपा था। लेख का अनुवाद सुश्री दीपा ने किया है। –सम्पादक

दुनिया की पहली वन-वे (one way) गली कौन सी थी? हॉलीवुड की सनसेट बुलव्हार्ड (Sunset Boulevard)? पैरिस की रू लफ़ायेत (Rue Lafayette)? रियो (Rio) की प्रेअ डी कोपाकाबाना (Praia de Copacabana)? या लन्दन की आल्बेमार्ल स्ट्रीट (Albemarle Street)?

एक ऐसा प्रश्न जो *कौन बनेगा करोड़पति* के लिए भी शायद बहुत कठिन हो। सही उत्तर सूची में अन्तिम है।

आल्बेमार्ल स्ट्रीट एक आम सड़क है जिस पर एक प्रतिष्ठित संस्थान रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन स्थित है। 19वीं सदी में यहां पर माइकल फ़ैरडे द्वारा दिये गये प्रयोगात्मक व्याख्यानों के कारण इस संस्थान को प्रसिद्धि प्राप्त हुई। इस प्रतिष्ठित वैज्ञानिक ने बिजली के विज्ञान में बुनियादी और महत्वपूर्ण योगदान दिया और डायनमो पर किये गये उन के काम की ही बदौलत हम आज बिजली का प्रयोग कर पाते हैं। फ़ैरडे विज्ञान सम्बन्धी अपने ज्ञान और उत्साह को आम आदमी के साथ बाँटने को तत्पर रहते थे। बच्चों के लिए दिये गये उन के व्याख्यान, जिन में से कुछ लिखित में मौजूद हैं, सम्प्रेषण की उन की असाधारण दक्षता को दर्शाते हैं।

अपने प्रश्न पर वापिस लौटते हैं। फ़ैरडे के व्याख्यानों के प्रति लोगों का इतना व्यापक रूझान था कि आल्बेमार्ल स्ट्रीट घोड़ा गाड़ी, टैक्सी आदि से जाम हो जाती थी और अन्त में एक ही हल बचा कि इस सड़क को वन वे बना दिया जाए, यानी एक ही ओर से वाहन आ सकते थे।

फ़ैरडे की सटीक दूरदृष्टि ने देख लिया था कि विज्ञान एक ऐसी ताकत है जिस का समय आ चुका है – नहीं भी आया, तो जल्दी ही आने वाला है। महारानी विक्टोरिया के समय के इंग्लैण्ड में तकनीकी का बोलबाला अभी नहीं था, लेकिन फ़ैरडे के समय में विज्ञान एक ऐसा नन्हा पौधा था जिस का विशाल, वट वृक्ष रूप आज हम उन शाखों और जड़ों में देखते हैं जो पूरे समाज में फैल चुकी

प्रोफ़ेसर जयन्त नार्लिकर *अन्तर विश्वविद्यालय केन्द्र : खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी, पुणे* के निदेशक हैं।

हैं। अब इस के प्रभाव से बचा रहना संभव नहीं है। अपने जीवन में से 20वीं सदी की खोजों को निकालने का प्रयास करें तो हमें एहसास होगा कि हमें जीना कितना मुश्किल होगा।

भारत की स्थिति एक पूर्णतः विकसित देश से भिन्न है – यहां एक स्पैक्ट्रम की माफ़िक हमें तकनीकी विकास के कई स्तर देखने को मिलते हैं। बैलगाड़ी के साथ-साथ जैट वायुयान के पाये जाने का उदाहरण अब पुरानी और घिसी-पिटी सी बात लगती है। इस से भी अधिक गंभीर बात यह है कि युगों पुराने अन्धविश्वास उच्च तकनीक के साथ खड़े दिखते हैं – अक्सर यह विरोधाभास हमें एक ही व्यक्ति में भी देखने को मिलता है। मोबाइल फ़ोन एवं लैप टॉप से लैस एक व्यापारी भी वास्तुशास्त्रियों की अप्रमाणित सलाह मानने को तैयार मिलेगा : वह अपना घर दोबारा बनवाने को सहर्ष तैयार हो जाएगा – यह सोच कर कि यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो उसे एक के बाद एक कई नुकसान हो सकते हैं। ऐसी मानसिकता और सोच प्रक्रिया के चलते यह अति आवश्यक हो जाता है कि लोगों में विज्ञान के प्रति रुचि तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सराहना की भावना को बढ़ावा दिया जाए। जनता के धन पर निर्भर रहने वाले वैज्ञानिक इस उद्देश्य की पूर्ति में योगदान दे सकते हैं एवं ऐसा उन्हें करना ही चाहिए।

मोबाइल फ़ोन एवं लैप टॉप से लैस एक व्यापारी भी वास्तुशास्त्रियों की अप्रमाणित सलाह मानने को तैयार मिलेगा : वह अपना घर दोबारा बनवाने को सहर्ष तैयार हो जाएगा – यह सोच कर कि यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो उसे एक के बाद एक कई नुकसान हो सकते हैं। ऐसी मानसिकता और सोच प्रक्रिया के चलते यह अति आवश्यक हो जाता है कि लोगों में विज्ञान के प्रति रुचि तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सराहना की भावना को बढ़ावा दिया जाए। जनता के धन पर निर्भर रहने वाले वैज्ञानिक इस उद्देश्य की पूर्ति में योगदान दे सकते हैं एवं ऐसा उन्हें करना ही चाहिए।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में यह सोच और हैरानी का विषय हो सकता है कि फ़ैरडे की तर्ज़ पर दिये गये विज्ञान सम्बन्धी व्याख्यान तथा विज्ञान पर लेक्चर डैमन्स्ट्रेशन 21वीं सदी के भारत में किस हद तक लोगों द्वारा ग्रहण किये जाएंगे और उन्हें स्वीकार्य होंगे। मेरा अपना अनुभव है कि इस प्रकार के प्रयोग के लिए काफ़ी गुंजाइश है बशर्ते कि मेरे वैज्ञानिक साथी इसे गम्भीरता से लें।

सब से पहला काम तो स्वयं को यह विश्वास दिलाना है कि मैं यह कर सकता हूँ, तथा यह एक करने योग्य काम है। बहुत से वैज्ञानिक इन दो बाधाओं के आगे लड़खड़ा जाते हैं। उन्हें या तो यह विश्वास नहीं होता कि वे अपने विषय को आम आदमी के स्तर तक ला सकते हैं या वे यह सोचते हैं कि यह उन के कीमती समय की बरबादी है। लेकिन समय प्रबन्धन द्वारा कुछ समय इस गतिविधि के लिए निकाला जा सकता है, और इसे अभ्यास द्वारा आम श्रोताओं तक भी पहुँचाया जा सकता है तथा उन्हें विज्ञान सम्बन्धी अपने विशेष विषय के प्रति उत्साहित किया जा सकता है। हां, स्वयं को यह विश्वास तो दिलाना ही होगा कि यह वास्तव में करने लायक गतिविधि है। समस्या यह है कि कई

सुपर फ़ैरडे कुछ और ही सोचते हैं।

अगली बाधा श्रोताओं के स्तर पर आती है। बच्चों की अपेक्षा पढ़े–लिखे वयस्कों की ऐसी सोच बन चुकी है कि विज्ञान तो उन के सिर के ऊपर से गुज़रेगा। इस लिए जब वे एक सफल व्याख्यान सुनते हैं तो उन की पहली प्रतिक्रिया अविश्वास की होती है। वे हैरान होते हैं कि वास्तव में उन्हें वह सब समझ आ गया जो वक्ता ने बोला। व्याख्यान के अन्त में बच्चों द्वारा ढेरों सवाल पूछे जाना इस ओर इशारा करता है कि व्याख्यान सफल रहा। दूसरी ओर पंडिताऊ तथा तकनीकी भाषा का इस्तेमाल वयस्कों और बच्चों, दोनों को अपने से दूर कर सकता है, उन से तालमेल को बढ़ाने की बजाय उसे कमज़ोर बना सकता है।

अगली बाधा श्रोताओं के स्तर पर आती है। बच्चों की अपेक्षा पढ़े–लिखे वयस्कों की ऐसी सोच बन चुकी है कि विज्ञान तो उन के सिर के ऊपर से गुज़रेगा। इस लिए जब वे एक सफल व्याख्यान सुनते हैं तो उन की पहली प्रतिक्रिया अविश्वास की होती है। वे हैरान होते हैं कि वास्तव में उन्हें वह सब समझ आ गया जो वक्ता ने बोला। व्याख्यान के अन्त में बच्चों द्वारा ढेरों सवाल पूछे जाना इस ओर इशारा करता है कि व्याख्यान सफल रहा। दूसरी ओर पंडिताऊ तथा तकनीकी भाषा का इस्तेमाल वयस्कों और बच्चों, दोनों को अपने से दूर कर सकता है, उन से तालमेल को बढ़ाने की बजाय उसे कमज़ोर बना सकता है।

यह काम बहुत बार करने की बदौलत मैं समस्याओं की सूची बनाने की स्थिति में हूँ। किसी वैज्ञानिक संस्थान के सभागार में भाषण देना एक बात है तथा किसी छोटे स्थान पर ग्रामीण श्रोताओं के आगे भाषण देना बिल्कुल अलग बात है। इस बात की गारण्टी नहीं होती कि प्रोग्राम के दौरान बिजली रहेगी ही, लेकिन फिर मुझे तारापुर नाभिकीय विद्युत स्टेशन में इंजिनियरों एवं उन के परिवार के लोगों को दिए गए अपने भाषण की याद आती है – जैसे ही मैंने स्लाइड दिखानी शुरू की, वहां भी बिजली चली गयी।

यदि चमत्कारवश बिजली बनी रहती है तो भी कई अन्य समस्याएं आ सकती हैं। हो सकता है कि तत्काल मुहैया करवाया गया परदा ऐसा हो कि आधे श्रोताओं को ही दिखाई दे, आप की स्लाइडों में गड़बड़ हो सकती है, और इस से भी अधिक दयनीय स्थिति होगी कि ऐसा पुराना प्रोजैक्टर मिले जो पल-पल तंग करने लगे या फिर माइक कर्णभेदी सीटियां बजाने लगे, और यह भी संभव है कि किसी स्थानीय सम्मानित व्यक्ति के लिए लम्बा इन्तज़ार करना पड़े आदि-आदि। आप को और स्थितियों के लिए भी तैयार रहना होगा – समय बरबाद करने वाली रस्मों को स्वीकारना होगा: माला पहनाने की या स्मारिका प्रकाशित करने की रस्म, स्वागत भाषणों और कभी न ख़त्म होने वाले धन्यवाद प्रस्तावों और अध्यक्ष द्वारा दी गयी समापन टिप्पणी जिस का व्याख्यान से कोई लेना देना नहीं होता, आदि को सुनने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। ये हमारे सार्वजनिक कार्यक्रमों के वे सांस्कृतिक पक्ष हैं जो हमारी "घुट्टी" में पड़ चुके हैं, गहरी पैठ बना चुके हैं।

ऐसे मौकों पर मंच पर घिरे हुए, मैं उस शुक्रवार की शाम को याद करता हूँ जब मैंने 1971

में फ़ैरडे रॉयल संस्थान में व्याख्यान दिया था। वह पूजनीय संस्थान शाम को 9 बजे होने वाले व्याख्यानों की पुरानी परम्परा को अब भी निभा रहा है। वक्ता को औपचारिक रूप से निदेशक द्वारा सभागार में लाया जाता है तथा ठीक 9 बजे मंच पर चढ़ाया जाता है तथा बिना किसी परिचय और अन्य औपचारिकताओं के वक्ता बोलना शुरू कर देता है। घड़ी की सूई के दस पर पहुंचते ही उसे बिना किसी धन्यवाद प्रस्ताव के सभागार छोड़ना होता है। श्रोताओं की वक्ता से परस्पर बातचीत बाद में बाहर, खुले में चाय पान के दौरान संभव होती है। मैं महसूस करता हूँ कि हम वैज्ञानिकों को सार्वजनिक कार्यक्रमों में उपरोक्त भावना को अमली जामा पहनाना चाहिए ताकि एक नयी लीक पड़े जिस के तहत परिचय और धन्यवाद प्रस्ताव आदि रस्में कुल मिला कर तीन मिनट तक ही सीमित रहें।

अन्त में मैं कहना चाहूंगा कि सब मुश्किलों और कष्टों की क्षतिपूर्ति श्रोताओं से मिलने वाली उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया के माध्यम से हो जाती है। इस से सिद्ध होता है कि लोगों में विज्ञान को जानने की महत्वपूर्ण जिज्ञासा है, एक ऐसी जिज्ञासा जिसे वैज्ञानिकों द्वारा अधिक से अधिक लोगों में अपनी खोजों की उत्तेजना को बांट कर शांत किया जा सकता है – और इसी प्रयास के तहत 21वीं सदी में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के महत्व को भी हम लोगों तक पहुंचा सकते हैं।